Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 10 | ISSUE : 11 | NOVEMBER 2024

धर्मावतार महात्मा विदुर का धर्म एवं नीतिपरक उपदेश

डॉ. बलवन्त सिंह चौहान [1] | नीलिमा [2]

[1] प्रोफेसर एवं शोध निर्देशक (संस्कृत), डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

[2] शोध छात्रा (संस्कृत), डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

ABSTRACT:

धर्मावतार महात्मा विदुर अत्यन्त सदाचारी, भगवद् भक्त, विद्वान्, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ और परम मेधावी थे। ये महाराज धृतराष्ट्र के स्पष्टवादी विवेकी और कर्त्तव्यनिष्ठ मन्त्री थे, जिन्होंने महाभारत में लोकव्यवहार, सदाचार, धर्म, सुख-दुःख प्राप्ति के साधन, त्याज्य और ग्राह्य गुणों तथा कर्मों का निर्णय, त्याग की महिमा, न्याय का स्वरूप, सत्य, परोपकार, क्षमा, अहिंसा, निर्लोभता, राजधर्म तथा सुखी जीवन की निर्माण शैली विषयक पक्षों को अपने ज्ञान और अनुभव की कसौटी पर कसकर अनेक सन्दर्भों में गम्भीर पक्षों को अनावृत्त किया है। महाभारत के उद्योगपर्व में धर्म एवं नीति के विषय में दिये गये इनके सदुपदेशों को धर्मशास्त्रों में विदुरनीति के नाम से प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। महात्मा विदुर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सदैव पाण्डवों के रक्षक एवं सहायक बने रहे। बड़े-बड़े संकट और विपत्ति में भी इन्होंने सदैव धर्म का पालन किया। धर्म में इनकी दृढ़ निष्ठा और अटूट विश्वास का आधार रहा यतो धर्मोस्ततो जयः।

KEYWORDS:

धर्म, नीति, निर्लोभ, अहिंसा, क्षमा, सत्य, न्याय, सदाचार, स्पष्टवादी, बुद्धिमान्, प्रजानुरंजन।

PAPER ACCEPTED DATE:	PAPER PUBLISHED DATE:
22nd November 2024	24th November 2024

संक्षिप्त परिचय एवं व्यक्तित्व - महात्मा विदुर साक्षात् धर्म के अवतार थे। माण्डव्य ऋषि के शाप से इन्हें शूद्र योनि में जन्म धारण करना पड़ा था। ये महाराज विचित्रवीर्य की दासी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ये धृतराष्ट्र और पाण्डु के सगे भाई ही थे। ये बड़े ही बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, धर्मशील, विवेकी, सदाचारी और अनन्य भगवद्भक्त थे। इनकी स्पष्टवादिता और निर्लोभता जगत् में विख्यात है। **'हितं मनोहारि च दुर्लभ वचः।'** हितकारी और मन को अच्छा लगने वाला वचन ये दोनों एक साथ दुर्लभ हैं। यह सद्वक्ति इनके ऊपर सर्वतोभावेन घटित होती है। इनके इन्हीं गुणगणों के कारण इनका सभी लोग बहुत सम्मान किया करते थे। ये निर्भीक और सत्यवादी थे तथा धृतराष्ट्रादि को धर्म के अनुकूल नेक सलाह दिया करते थे। विदुरजी की इतनी सकारात्मक विशेषताएँ थीं कि उनका चिन्तन- मनन और सत्नीति विषयक धारणाएँ न केवल उस कालावधि में अपितु व्यापक तौर पर देश, कालातीत मानव मात्र के लिए परम उपादेय हैं। महाभारत के उद्योगपर्व में 33वें से 40वें अध्याय तक विदुरजी द्वारा जो परमधर्ममय लोक-परलोक को सँवारने वाले सिद्धान्त या नीतियाँ हैं, उनका बहुशः चित्रण

किया है। विदुर नीति पर संस्कृत और हिन्दी भाषाओं में प्रभूत टीकाएँ प्राप्त होती हैं। विदुर नीति में लोक व्यवहार, सदाचार, धर्म, नीति, न्याय, त्याग, सत्य, परोपकार, क्षमा, अहिंसा, मित्र के लक्षण, कृतघ्न की दुर्दशा, निर्लोभता आदि का बहुविषयक प्रतिपादन किया गया है। विदुर नीति की भाषा और भाव नितान्त सरल, स्पष्ट और लोक-परलोक में इष्ट साधक हैं। इससे अपठित तथा विद्वान्, युवक एवं वृद्ध, बालक-स्त्री, प्रजा एवं प्रशासक, धनी-निर्धन, विद्यार्थी-शिक्षक, सेवाभावी शुद्ध एवं शान्तिमय जीवन के अभिलाषीजन के लिए नितान्त लाभदायक है।

धर्म एवं नीतिपरक उपदेश - इनके नीति-वचन युगों-युगों तक जनमानस को सन्मार्ग में प्रेरित करते रहेंगे। जब दुर्योधन का जन्म हुआ तो वह गधे की भाँति रेंकने लगा था और उसके जन्म के समय अमङ्गल सूचक उत्पातों की झड़ी लग गई थी। इसे देखकर ब्राह्मणों के साथ विदुरजी ने धृतराष्ट्र को कहा कि आपका यह पुत्र कुलनाशक होगा। इसलिए इसे त्यागने में ही भलाई है। शास्त्रों की आज्ञा है कि कुल के लिए एक मनुष्य को, ग्राम के लिए कुल का, देश के लिए ग्राम का और आत्मोद्धार के लिए समस्त भूमण्डल का त्याग कर देना चाहिए –

त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथ्वीं त्यजेत्॥[1]

विदुरजी ने धृतराष्ट्र को अनेकधा व्यवहार, नीति एवं धर्म का उपदेश किया है। लोभ से बचने, धैर्य रखने तथा एक प्रजापालक के गुणों के विषय में उनका कहना है-

भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नं मत्स्यो बडिशमायासम्।
लोभाभिपाती ग्रसते नानुवन्धमवेक्षते॥
यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत्।
हितं च परिणामे यत् तदाद्यं भूतिमिच्छता॥
वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः।
स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति॥
यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम्।
फलाद रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः॥
यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः।
तद्वदर्थान् मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया॥
पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकार इवारामे न यथाङ्गारकारकः॥[2]

अर्थात् - जैसे मछली वढ़िया खाद्य वस्तु से ढकी हुई। लोहे की काँटी को लोभ में पड़कर निगल जाती है, उससे होने वाले परिणाम पर विचार नहीं करती (अतएव मर जाती है)। अतः अपनी उति चाहने वाले पुरुष को वही वस्तु खानी (या ग्रहण करनी) चाहिये, (जो परिणाम में अनिष्टकर न हो अर्थात्) जो खाने योग्य हो तथा खायी जा सके, खाने (या ग्रहण करने) पर पच सके और पच जाने पर हितकारी हो। जो पेड़ से कच्चे फलों को तोड़ता है, वह उन फलों से रस तो पाता नहीं, परंतु उस वृक्ष के बीज का नाश हो जाता है। परंतु जो समय पर पके हुए फल को ग्रहण करता है, वह फल से रस पाता है और उस बीज से पुनः फल प्राप्त करता है। जैसे भौरा फूलों की रक्षा करता हुआ ही उनके मधु का ग्रहण करता है, उसी प्रकार राजा भी प्रजाजनों को कष्ट दिये बिना ही उनसे धन ले। जैसे माली बगीचे में एक-एक फूल तोड़ता है, उसको जड़ नहीं काटता, उसी प्रकार राजा प्रजा की रक्षापूर्वक उनसे कर ले। कोयला बनाने वाले की तरह जड से नहीं काटे।

धर्मात्मा विदुर धृतराष्ट्र को समझाते हुए नीतियुक्त संदेश देकर उन्हें श्रेष्ठ राजा के गुणों के बारे में इस प्रकार बतलाते हैं –

चक्षुसा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम् ।

प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति ॥[3]

धर्ममाचरतो राज्ञः सद्भिश्चरितमादितः ।

वसुधा वसुसम्पूर्णा वर्धते भूतवर्धिनी ॥4

अर्थात् - जो राजा नेत्र, मन, वाणी और कर्म इन चारों से प्रजा को प्रसन करता है, उसी से प्रजा प्रसन्न रहती है । परम्परा से सज्जन पुरुषों द्वारा किये हुए धर्म का आचरण करने वाले राजा के राज्य की पृथ्वी धन-धान्य से पूर्ण होकर उन्नति को प्राप्त होती है और उसके ऐश्वर्य को बढ़ाती है ।

एक महामंत्री के रूप में विदुरजी धृतराष्ट्र को राज्यहित के साथ-साथ प्रजानुरंजन का मार्ग बतलाते रहते हैं । विदुर ने उत्तम, मध्यम तथा अधम पुरुषों की तीन कोटियों को उनकी योग्यता के अनुसार कर्म करने का उपदेश दिया है । साथ ही श्रेष्ठ पुरुषों के गुणों की तुलना निकृष्ट पुरुषों से करते हुए कहते हैं –

अनसूयाऽऽर्जवं शौचं संतोषः प्रियवादिता।

दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम् ।।[5]

अर्थात् - गुणों में दोष न देखना, सरलता, पवित्रता, संतोष, प्रिय वचन बोलना, इन्द्रियमन, सत्यभाषण तथा सरलता- ये गुण दुरात्म पुरुषों में नहीं होते ।

आत्म ज्ञान, अक्रोध, सहनशीलता, धर्मपरायणता, वचन की रक्षा और दान को उत्तम पुरुषों का गुण बताते हुए विदुरजी कहते हैं कि मूर्ख मनुष्य विद्वानों को गाली और निन्दा से कष्ट पहुँचाते हैं, गाली देने वाला पाप का भागी होता है और क्षमा करने वाला पाप से मुक्त हो जाता है । अतः मनुष्य को वाणी में संयम रखना चाहिए और वाचाल होने की अपेक्षा मितभाषी बनने का प्रयास करना चाहिए -

वाक्संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः ।

अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहु भाषितुम् ॥[7]

अर्थात् - राजन् ! वाणी का संयम तो बहुत कठिन माना हो गया है, परन्तु विशेष अर्थयुक्त और चमत्कार पूर्ण वाणी भी अधिक नहीं बोली जा सकती (इसलिये अत्यन्त दुष्कर होने पर भी वाणी का संयम करना ही उचित है।)

महात्मा विदुर द्वारा धृतराष्ट्र को धर्म के स्वरूप का विवेचन करते हुए सत्यरूपी परमधर्म के साथ-साथ क्षमारूपी परमधर्म की महत्ता का निरूपण करते हुए इसके पालन का उपदेश किया गया है ।

एकमेवाद्वितीयं तद् यद् राजन् नावबुध्यसे ।

सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव ॥

सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम् ।

क्षमा गुणो हाशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा ॥

क्षमा वशीकृतिलोंके क्षमया किं न साध्यते ।

शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः ॥

अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ।

अक्षमावान् परं दोषैरात्मानं चैव योजयेत् ॥

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा ।

विद्यद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा ॥[8]

अर्थात् - राजन् ! जैसे समुद्र के पार जाने के लिए नाव ही एकमात्र साधन है, उसी प्रकार स्वर्ग के लिए सत्य ही एकमात्र सोपान है, दूसरा नहीं, किन्तु आप इसे नहीं समझ रहे हैं । किन्तु क्षमाशील पुरुष का वह दोष नहीं मानना चाहिये; क्योंकि क्षमा बहुत बड़ा बल है । क्षमा असमर्थ मनुष्यों का गुण तथा समर्थों का भूषण है। इस जगत् में क्षमा वशीकरण रूप है । भला, क्षमा से क्या नहीं सिद्ध होता? जिसके हाथ में शान्तिरूपी तलवार है, उसका दुष्ट पुरुष क्या कर लेंगे? तृणरहित स्थान में गिरी हुई आग अपने-आप बुझ जाती है । क्षमाहीन पुरुष अपने को तथा दूसरे को भी दोष का भागी बना लेता है। केवल धर्म ही परम कल्याणकारक है, एकमात्र क्षमा हो शान्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय है । एक विद्या ही परम संतोष देने वाली है और एकमात्र अहिंसा ही सुख देने वाली है ।

धर्म के आठ प्रकार के मार्गों का सङ्केत करते हुए महात्मा विदुर द्वारा सज्जनों की सनिधि और संतगणों के द्वारा अनुसरण किये जाने वाले मार्ग बताकर श्रेष्ठजनों को परमधर्म की ओर अग्रेषित होने के लिए प्रेरित किया है । यज्ञ, दान, शास्त्रों का अध्ययन और तप ये चार सज्जनों के साथ नित्य सम्बद्ध हैं और इन्द्रियनिग्रह, सत्य, सरलता तथा कोमलता इन चारों का संतलोग अनुसरण करते हैं । यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और निर्लोभता ये धर्म के आठ प्रकार के मार्ग बताये गये हैं ।

यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च चत्वार्येतान्यन्ववेतानि सद्भिः ।

दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं चत्वार्येतान्यनुयान्ति सन्तः ॥

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा ।

अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥[9]

मितभाषिता को पुरुषों का श्रेष्ठ गुण मानते हुए विदुरजी ने वाणी के उत्तम प्रयोग के साथ सुसंयत वाणी के माध्यम से धर्मपालन का सदुपदेश देते हुए कहा है –

अव्याहतं व्याहताच्छ्रेय आहुः सत्यं वदेद् व्याहृतं तद् द्वितीयम् ।

प्रियं वदेद् व्याहृतं तत् तृतीयं धर्म वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम् ॥

यादृशैः संनिविशेते यादृशां श्रोपसेवते ।

यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः ॥

यतो यतो निवर्तते ततस्ततो विमुच्यते ।

निवर्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुःखमण्वपि ॥

न जीयते चानुजिगीषतेऽन्यान् न वैरकृच्चाप्रतिघातकश्च ।

निन्दाप्रशंसासु समस्वभावो न शोचते हृष्यति नैव चायम् ॥

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावो कुरुते मनः ।

सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपूरुषः ॥10

अर्थात् - बोलने से न बोलना ही अच्छा बताया गया है, (यह वाणी की प्रथम विशेषता है और यदि बोलना ही पड़े तो) सत्य बोलना वाणी की दूसरी विशेषता है यानी मौन की अपेक्षा भी अधिक लाभप्रद है । (सत्य और) प्रिय बोलना वाणी की तीसरी विशेषता है । यदि सत्य और प्रिय के साथ ही धर्मसम्मत भी कहा जाय तो वह वचन की चौथी विशेषता है । (इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है) । मनुष्य जैसे लोगों के साथ रहता है, जैसे लोगों की सेवा करता है और जैसा होना चाहता है, वैसा ही हो जाता है । मनुष्य जिन-जिन विषयों से मन को हटाता जाता है, उन उनसे उसकी मुक्ति हो जाती है; इस प्रकार यदि सब ओर से निवृत्त हो जाय तो उसे लेशमात्र दुःख का भी कभी अनुभव नहीं होता । जो न तो स्वयं किसी से जीता जाता, न दूसरों को जीतने की इच्छा करता है, न किसी के साथ वैर करता और न दूसरों को चोट पहुँचाना चाहता है, जो निन्दा और प्रशंसा में समान भाव रखता है, वह हर्ष-शोक से परे हो जाता है । जो सबका कल्याण चाहता है, किसी के अकल्याण की बात मन में नहीं लाता, जो सत्यवादी, कोमल और जितेन्द्रिय है, वह उत्तम पुरुष माना गया है ।

विदुरजी धृतराष्ट्र को कुशल व्यवहार को जीवन में धारण करने तथा व्यवहारशील बने रहने के लिए उन्हें व्यवहारनीति का उपदेश करते हुए कहते हैं –

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य-स्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः ।

मायाचारो मायया वर्तितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया ।

कामो हियः वृत्तमनार्यसेवा क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः ॥

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कॉल्यं च श्रुतं दमश्च ।

पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥[11]

अर्थात् - जो मनुष्य अपने साथ जैसा बर्ताव करे, उसके साथ वैसाही बर्ताव करना चाहिए - यही नीतिधर्म है। कपट का आचरण करने वाले के साथ कपटपूर्ण बर्ताव करे और अच्छा

बर्ताव करने वाले के साथ साधुभाव से ही बर्ताव करना चाहिए। बुढ़ापा रूप का, आधा धैर्य का, मृत्यु प्राणों का, दूसरों के गुणों में दोषदृष्टि धर्माचरण का, काम लज्जा का, नीच पुरुषों की सेवा सदाचार का, क्रोध लक्ष्मी का और अभिमान सर्वस्व का ही नाश कर देता है। इसी क्रम में उनका कहना है मनुष्य के आठ गुण उसकी शोभा बढ़ाते हैं बुद्धि, कुलीनता, शास्त्रज्ञान, इन्द्रियनिग्रह, पराक्रम, अधिक न बोलने का स्वभाव, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता।

अतिथि सत्कार एवं स्त्रियों के सम्मान का उपदेश करते हुए महात्मा विदुर महाराज धृतराष्ट्र को कहते हैं –

पीठं दत्त्वा साधवेऽभ्यागताय आनीयापः परिनिर्णज्य पादौ।

सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः॥

अनीर्युर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः।

श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्वीणां न चासां वशगो भवेत्॥

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः।

स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्या विशेषतः॥[12]

अर्थात् - धीर पुरुष को चाहिए, जब कोई साधु पुरुष अतिथि के रूप में घर पर आये, तब पहले आसन देकर एवं जल लाकर उसके चरण पखारे, फिर उसको कुशल पूछकर अपनी स्थिति बतावे, तदनन्तर आवश्यकता समझकर अन्न भोजन करावे। मनुष्य को चाहिए कि वह ईर्ष्यारहित, स्त्रियों का रक्षक, सम्पत्ति का न्यायपूर्वक विभाग करने वाला, प्रियवादी, स्वच्छ तथा स्त्रियों के निकट मीठे वचन बोलने वाला हो, परन्तु उनके वश में कभी न हो। स्त्रियां घर की लक्ष्मी कही गयी हैं। ये अत्यन्त सौभाग्यशालिनी, आदर के योग्य, पवित्र तथा घर की शोभा हैं; अतः इनकी विशेषरूप से रक्षा करनी चाहिए।

महात्मा विदुर धृतराष्ट्र को धर्म के अवबोध तथा अर्थ के व्यापक ज्ञान हेतु शास्त्रों का ज्ञान व वृद्धजनों की सेवा को परम आवश्यक मानते हैं। साथ ही धर्मज्ञ व्यक्ति को जितेन्द्रिय होकर धर्मपालन का निर्देश करते हुए कहते हैं –

न वै श्रुतमविज्ञा वृद्धाननुपसेव्य वा।

धर्मार्थौ वेदितुं शक्यौ वृहस्पतिसमैरपि॥

नष्टं समुद्र पतितं नष्टं वाक्यमशृण्वति।

अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमनग्निकम्॥[13]

अर्थात् - बृहस्पति के समान मनुष्य भी शास्त्रज्ञान अथवा वृद्धों की सेवा किये बिना धर्म और अर्थ का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते। समुद्र में गिरी हुई वस्तु विनाश को प्राप्त हो जाती है; जो सुनता नहीं, उससे कही हुई बात भी विनष्ट हो जाती है; अजितेन्द्रिय पुरुष का शास्त्रज्ञान और राख में किया हुआ हवन भी नष्ट ही है।

धर्मात्मा विदुर महाराज धृतराष्ट्र के मोहरूपी क्लेश का शमन करते हुए उन्हें धर्म की नित्यता का पाठ पढ़ाते हैं। साथ ही, राजा के रूप में अपने परमधर्म का पालन करते हुए न्याय करने की प्रेरणा देकर संतोषरूपी परमधर्म का निदर्शन कराते हैं -

इदं च तवां सर्वपरं ब्रवीमि पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम्।

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्म जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः॥

नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य तवनित्यः।

त्यक्त्वानित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये संतुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः॥[14]

अर्थात् - अब मैं तुम्हें यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं सर्वोपरि पुण्यजनक बात बता रहा हूँ - कामना से, भय से, लोभ से तथा इस जीवन के लिए भी कभी धर्म का त्याग न करें। धर्म नित्य है, किन्तु सुख-दुःख अनित्य हैं। जीव नित्य है, पर इसका कारण अनित्य है। आप अनित्य को छोड़कर नित्य में स्थित होइये और संतोष धारण कीजिए, क्योंकि संतोष ही सबसे बड़ा लाभ है।

धृतराष्ट्र द्वारा पाण्डवों का विरोध करने पर विदुरजी ने उन्हें समझाया कि महाराज अर्थ, धर्म और काम इन तीनों फलों की प्राप्ति धर्म से ही होती है। राज्य की जड़ है धर्म। अतः आप धर्म में स्थित होकर पाण्डवों एवं अपने पुत्रों की रक्षा कीजिए। आपके पुत्रों ने शकुनि की सलाह से भरी सभा में धर्मशीला कुलवधू द्रौपदी का अपमान किया है। कपटपूर्वक सत्यसिंध युधिष्ठिर को द्यूत में पराजित कर उनका सर्वस्व हरण कर लिया। यह बड़ा अधर्म हुआ है। उन्होंने उपाय बताया कि आपके पुत्रों द्वारा जो पाण्डवों का हक छीन लिया गया है वह सब उन्हें लौटा दीजिए। इससे आपका लान्छन छूट जाएगा। भाई-भाई में फूट नहीं पड़ेगी और अधर्म भी नहीं होगा। यदि आपके पुत्रों का तनिक भी सौभाग्य शेष हो तो शीघ्रातिशीघ्र यह कार्य आप कर लेवें, अन्यथा कुरुवंश का नाश हो जाएगा।

विदुरजी की मन्त्रणा परमधर्म का सुन्दरतम निदर्शन है। विदुरजी ने स्वयं धृतराष्ट्र को धर्म और नीति की बात सुझाई। सनत, सुजात जैसे सिद्धयोगी एवं तत्त्ववेत्ता के द्वारा उपदेश कराकर उनके कल्याण का पथ प्रशस्त किया। वस्तुतः महात्माओं का जीवन दूसरे के श्रेय सम्पादनार्थ ही होता है। यद्यपि वे तत्त्वज्ञानी थे, फिर भी दासी पुत्र होने के नाते स्वयं उपदेश न देकर सनातन मर्यादा की रक्षा की। भगवान् श्रीकृष्ण जी के चरणों में उनकी विलक्षण निष्ठा रहीं जब श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर हस्तिनापुर गये तो वे धृतराष्ट्रादि सभासदों से मिलकर सीधे विदुर जी के यहाँ पहुँचकर उनका आतिथ्य स्वीकार किया। यद्यपि श्रीकृष्ण के सम्मान में भीष्म, द्रोण, कृष आदि कई सम्मानित लोग श्रीकृष्ण से मिलने आये, किन्तु भगवान् ने सबको विदाकर विदुरजी के यहाँ ही पहले ब्राह्मणों को भोजन कराकर फिर स्वयं भोजन किया। विदुरजी ने युधिष्ठिर, दुर्योधन और धृतराष्ट्र को अनेक प्रसङ्गों में जीवनोपयोगी शाश्वत मूल्यों का उपदेश दिया किन्तु दुर्योधन और धृतराष्ट्र अपनी स्वेच्छाचारिता के कारण महाविनाश एवं संतापातिशय के भागी बने तथा युधिष्ठिर परम आमोद और शक्ति प्राप्त कर सके।

निष्कर्ष - महाभारत के उद्योगपर्व में अध्याय 33वें से 44वें तक विदुरजी द्वारा महाराजा धृतराष्ट्र को विविध विषयों पर दिया गया ज्ञानात्मक परामर्श धर्म, नीति, न्याय और समरसता का प्रतिपादक है। महात्मा विदुर द्वारा धृतराष्ट्र की विविध दिवाओं का शमन करते हुए और उनकी जिज्ञासाओं को शान्त करते हुए उन्हें धर्म के सूक्ष्म तत्त्वों का अभिज्ञान करवाया गया है। इन अध्यायों में प्रसङ्गानुकूल धर्मात्मा विदुर ने महाराज धृतराष्ट्र को परमधर्म का स्वरूप अनेकधा निर्दिष्ट किया है। सभी वर्षों के धर्मों का उनके कर्तव्याकर्त्तव्यों का विवेचन और धर्म एवं नीति की महत्ता के साथ परमधर्म का निर्देश विदुरजी द्वारा बारम्बार किया गया है।

REFERENCES

1. महाभारत, उद्योगपर्व 37/17
2. महाभारत, उद्योगपर्व 34/13-18
3. महाभारत, उद्योगपर्व- 34/25
4. महाभारत, उद्योगपर्व 34/28
5. महाभारत, उद्योगपर्व 34/72
6. महाभारत, उद्योगपर्व 33/73-74
7. महाभारत, उद्योगपर्व 34/76
8. महाभारत, उद्योगपर्व 33/47, 49-52
9. महाभारत, उद्योगपर्व- 35/55-56
10. महाभारत, उद्योगपर्व 36/12-16
11. महाभारत, उद्योगपर्व 37/7-8, 31
12. महाभारत, उद्योगपर्व- 38/2,10-11
13. महाभारत, उद्योगपर्व 39/39-40
14. महाभारत, उद्योगपर्व- 40/12-13